अनादि जैनधर्म

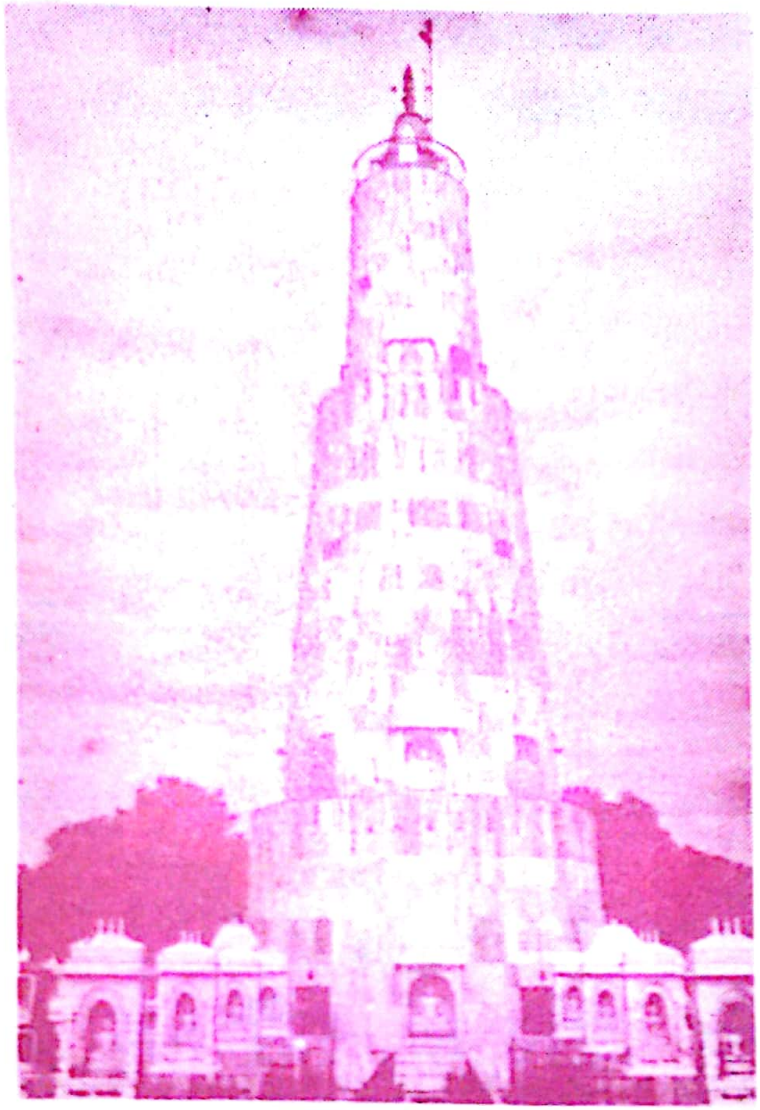

हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप के मध्य
आकाश को छूता हुआ भव्य सुमेरू पर्वत

गणिनी प्रमुख ज्ञानमती

Scanned by CamScanner

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं० 176

अनादि जैनधर्म

गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार के अवसर पर प्रकाशित

प्रकाशक :

दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर-250 404 (मेरठ) उ०प्र०

प्रथम संस्करण 5000 प्रति

वैशाख कृष्ण 2, वीर नि० सं० 2525
2 अप्रैल, 1999

मूल्य : 4.00

Scanned by CamScanner

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल, खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं बृहद् ग्रन्थों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर सिद्धान्त धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत

गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

समायोजन

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

निर्देशक

पीठाधीश धर्मदिवाकर क्षुल्लक रत्न श्री मोतीसागर जी

ग्रन्थमाला सम्पादक

कर्मयोगी ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन

गौहाटी निवासी श्री प्रकाशचन्द जी जैन सौगानी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

लेजर टाइपसैटिंग : मित्तल कम्प्यूटर्स, मेरठ।

मुद्रक : सुमन प्रिन्टर्स, शारदा रोड, मेरठ। ☎ 530925

Scanned by CamScanner

गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त परिचय

लेखक : *पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी*

22 अक्टूबर सन् 1934, वि०सं० 1991 की आश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरदपूर्णिमा) की रात्रि में 9 बजकर 15 मिनट पर उत्तर भारत की वसुधा पर स्थित बाराबंकी जिले में 'टिकैतनगर' ग्राम के श्रेष्ठी श्री धनकुमार जैन के पुत्र श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी की पवित्र कुक्षि से कन्या "मैना" ने प्रथम पुष्प के रूप में जन्म लिया था।

ब्रह्मचर्य व्रत एवं क्षुल्लिका दीक्षा—बचपन से ही मां के द्वारा धार्मिक संस्कार प्राप्त होने के कारण 'मैना' ने प्रबल पुरुषार्थ करके सन् 1952 में आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज के करकमलों से बाराबंकी में सप्तमप्रतिमा रूप आजन्मब्रह्मचर्य एवं सन् 1953 में चैत्र कृष्णा एकम् को अतिशय क्षेत्र महावीरजी में क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहणकर "वीरमती" नाम प्राप्त किया।

आर्यिका दीक्षा—लघुवयस्का क्षुल्लिका वीरमती माताजी ने दक्षिण भारत में जाकर चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के दर्शन किए पुनः उनके आदेशानुसार उनके ही प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से 'माधोराजपुरा' (राज०) में वैशाख कृष्ण द्वितीया सन् 1956 में आर्यिका दीक्षा लेकर "ज्ञानमती" सार्थक नाम से अलंकृत हुईं।

साहित्य सृजन—भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्ष के इतिहास में प्रथम बार आपने ही संस्कृत और प्राकृत के कठिन टीका ग्रन्थों के सृजन के साथ ही युवावर्ग एवं बालजगत की रूचि अनुसार छोटे-छोटे लगभग 200 ग्रन्थों का लेखन किया जो आबाल-वृद्ध सभी को ज्ञान का प्रकाश प्रदान कर रहे हैं।

निर्माण-प्रेरणा—हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप रचना आपकी अनमोल कृति है पुनः सन् 1993 में अयोध्या तीर्थ एवं 1995 में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र का सुन्दर विकास हुआ तथा उत्तर-प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात प्रांत के अनेक तीर्थों एवं शहरों में आपकी सम्प्रेरणा से कई नवनिर्माण के कार्य हुए।

धर्म प्रभावना के अन्य कार्य—अक्टूबर सन् 1997 में राजधानी दिल्ली के रिंग रोड पर "चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल" विधानों का विराट आयोजन हुआ तथा अक्टूबर 1998 में जम्बूद्वीप स्थल पर "भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन" ने एक कीर्तिमान स्थापित किया।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार—आपकी प्रेरणा से सन् 1982 से 1985 तक प्रधानमंत्री स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी ने "जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति" का प्रवर्तन किया पुनः वर्तमान में 22 मार्च 1998 में आपकी प्रेरणा से राजधानी दिल्ली से प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा प्रवर्तित "भगवान ऋषभदेव समवसरण रथ एवं विशाल ऐरावत हाथी रथ" भारत में भ्रमण करते हुए जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचा रहे हैं।

आज सारा देश पूज्य ज्ञानमती माताजी के चतुर्मुखी कार्यकलापों पर गौरव कर रहा है ऐसी उन गणिनी माताजी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की मंगलकामना पूर्वक—

है यही प्रार्थना जिनवर से, यह प्रभा सदा दिन दूनी हो।
भारत माता की गोदी इस, माता से कभी न सूनी हो॥

Scanned by CamScanner

दो शब्द

"आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है" इस सूक्ति को चरितार्थ करने वाली प्रस्तुत पुस्तक की रचना पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के करकमलों से हुई है। उन्होंने समय की आवश्यकता को देखते हुए भगवान् ऋषभदेव के माध्यम से अनादिनिधन जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करने का जो बिगुल देशभर में बजाया है उससे निश्चित ही समाज में नवचेतना जाग्रत हुई है।

धर्म यूं तो कहने की वस्तु नहीं प्रत्युत् धारण करने की वस्तु है तथापि उसके भ्रान्त स्वरूप को प्रचारित होते देख समय-समय पर उसे महापुरुषों ने प्रकाशित किया है। इसकी प्राचीनता एवं मौलिकता के बारे में मद्रास प्रान्त के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीयुत श्रीप्रकाशजी के दो टूक विचार वास्तव में दृष्टव्य हैं–

"The Jain religion, however, can legitimately be traced to a different sources, and in the mind of many, it regarded as a more ancient faith than the one that is known as Hinduism."

अर्थात् जैनधर्म मूलतः एक अलग ही धारा है तथा अनेक लोगों के विचारानुसार यह जैनधर्म बहुत ही प्राचीन है, यहां तक कि हिन्दू धर्म से भी।

इसी विषय को स्पष्ट करते हुए पुरातत्व विभाग के अधिकारी श्री पी०पी० राय चौधरी ने भी लिखा है कि–जैनधर्म की पौराणिकता के बारे में बता पाना बहुत कठिन है। इसके विपरीत किन्हीं-किन्हीं लेखकों ने जैनधर्म को भगवान् महावीर द्वारा संस्थापित मान लिया है किन्तु इस लघु पुस्तिका से इस भ्रान्ति का निराकरण सहज ही हो जायेगा।

पुस्तक में लेखिका ने जैन समाज में उत्पन्न नर-नारियों के लिए एक विशेष प्रेरणा प्रदान की है कि प्रत्येक जैन को अपने नामों के आगे 'जैन' शब्द का प्रयोग अवश्य करना चाहिए, उसके पश्चात् ही गोत्र अथवा सरनेम का प्रयोग करना चाहिए। भगवान् ऋषभदेव के पुत्र सम्राट् चक्रवर्ती भरत के नाम पर हमारे इस देश का 'भारत' नाम विभिन्न वेदपुराणों के माध्यम से सिद्ध किया है।

इस प्रकार यह पुस्तक अत्यन्त लघु होते हुए भी गागर में सागर के समान अपने में अपूर्व सार को समाहित करके पाठकों को जैनधर्म का ज्ञान कराने में कुञ्जी के समान है। इसका सदुपयोग कर आप सभी स्वयं समीचीन ज्ञान प्राप्त करें तथा अन्य जैन-अजैन सभी को उससे परिचित करावें यही हार्दिक अभिलाषा है।

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर
26.2.99

आर्यिका चन्दनामती

Scanned by CamScanner

२०० ग्रंथों की लेखिका, तीर्थोद्धारिका, परमपूज्य १०५ गणिनी

आर्यिका शिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

जन्म टिकैतनगर (बाराबंकी उ.प्र.) सन् १९३४ वि. सं. १९९१ शरद पूर्णिमा

क्षुल्लिका दीक्षा आ० श्री देशभूषण जी से श्री महावीरजी में वि. सं. २००९ चैत्र कृ. १

आर्यिका दीक्षा आ० श्री वीरसागर जी से माधोराजपुरा (राज०) में सं. २०१३ बैशाख कृ. २

Scanned by CamScanner

भव्य कमल मन्दिर में विराजमान भगवान महावीर तथा नवनिर्मित ध्यानमंदिर

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर, मेरठ (उ०प्र०)

Scanned by CamScanner

अनादि जैनधर्म

नमो नमः सत्त्वहितंकराय, वीराय भव्याम्बुजभास्कराय।
अनंतलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥

जैनधर्म के ग्रन्थों में लोक को–संसार को अनादिनिधन माना है। जैसे कि–''लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो[1]।''

इसी लोक में मध्यलोक में ''जम्बूद्वीप'' नाम से प्रथम द्वीप है। इसके अन्तर्गत भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। प्रथमतः काल के अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी नाम से दो भेद हैं। उनमें प्रत्येक के अर्थात् अवसर्पिणी के सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुषमासुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा ये छह भेद हैं तथा उत्सर्पिणी काल के भी अतिदुःषमा, दुःषमा, दुःषमासुषमा, सुषमादुःषमा, सुषमा और सुषमासुषमा ये छह भेद हैं।

वर्तमान की अवसर्पिणी काल में तृतीय काल के अंत में पल्य का आठवां भाग अवशिष्ट रहने पर चौदह कुलकर उत्पन्न हुये हैं। उनके नाम क्रमशः प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराय[2] हैं।

इनमें से अन्तिम कुलकर नाभिराय से प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव उत्पन्न हुये हैं।

चौबीस तीर्थंकरों के नाम—

श्रीऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन नाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्तनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी। इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुये इन चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार हो, ये ज्ञानरूपी फरसे से भव्यजीवों के संसाररूपी वृक्ष को छेदने वाले हैं।[3]

आगे आने वाले उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में जो चौबीस तीर्थंकर होवेंगे उनके नाम निम्न प्रकार हैं–

श्रीमहापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वप्रभ, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदंकनाथ, प्रोष्ठिलनाथ, जयकीर्ति, मुनिसुव्रत, अरनाथ, अपापनाथ, निष्कषायनाथ, विपुलनाथ

1. त्रिलोकसार गाथा 4, 2. त्रिलोकसार गाथा 792-793, 3. तिलोयपण्णत्ति अ० 4, पृ० 206।

Scanned by CamScanner

निर्मलनाथ, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त, स्वयंभूनाथ, अनिवृत्तिनाथ, जयनाथ, विमलनाथ, देवपाल और अनंतवीर्य ये चौवीस तीर्थंकर होवेंगे[1] इनमें से राजा श्रेणिक जो कि भगवान महावीर के समय हुये हैं ये आगे प्रथम तीर्थंकर 'महापद्म' होंगे। श्रीकृष्ण नारायण सोलहवें 'निर्मलनाथ' तीर्थंकर होंगे और रुद्र-महादेव चौवीसवें तीर्थंकर 'अनंतवीर्य' होंगे।[2]

वर्तमान में अवसर्पिणी का पांचवां 'दुःषमा' नाम का काल चल रहा है। इस अवसर्पिणी का 'हुंडावसर्पिणी' भी नाम है। इसमें कुछ अघटित घटनायें हुई हैं।

इस वर्तमान अवसर्पिणी से पूर्व जो उत्सर्पिणी काल हो चुका है। उसमें भी चौवीस तीर्थंकर हो चुके हैं। उनके नाम क्रमशः—

श्रीनिर्वाण, सागरनाथ, महासाधु, विमलनाथ, श्रीधरनाथ, सुदत्तनाथ, अमलप्रभनाथ, उद्धरनाथ, अंगिरनाथ, सन्मतिनाथ, सिन्धुनाथ, कुसुमाञ्जलिनाथ, शिवगणनाथ, उत्साहनाथ, ज्ञानेश्वर, परमेश्वर, विमलेश्वर, यशोधर, कृष्णमतिनाथ, ज्ञानमतिनाथ, शुद्धमतिनाथ, श्रीभद्रनाथ, अतिक्रांतनाथ और शान्तनाथ ये भूतकालीन तीर्थंकर हो चुके हैं।

अधिकतम तीर्थंकर संख्या—

मध्यलोक में ढाई द्वीप में एक सौ सत्तर कर्मभूमियां मानी हैं। उनमें से एक सौ साठ तो विदेहक्षेत्र की हैं और पांच भरतक्षेत्र तथा पांच ऐरावतक्षेत्र की, ऐसे 170 कर्मभूमि हैं। इन्हीं में से एक कर्मभूमि जम्बूद्वीप के दक्षिण में स्थित भरतक्षेत्र है जिसके आर्यखंड की कर्मभूमि में हम और आप रह रहे हैं। "इस प्रकार इन 170 कर्मभूमियों में अधिकतम 170 तीर्थंकर एक साथ हो सकते हैं और कम से कम 20 होते हैं" जो कि आजकल-वर्तमान में विदेहक्षेत्र में श्रीसीमंधर, श्रीयुगमंधर आदि नाम वाले हैं इन बीस तीर्थंकरों के नाम प्रसिद्ध हैं।

वैदिक ग्रन्थों में भी चौदह कुलकरों से मिलते-जुलते नाम वाले अवतार माने हैं। जैसे कि मनुस्मृति में कहा है—

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी चाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित्॥1॥
मरुदेवश्च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः[4]॥2॥

---

1. तिलोयपण्णत्ति अ०4, पृ० 350,
2. त्रिलोकसार एवं तिलोय प. अ० 4, पृ० 351।
3. तित्थयरसयच चक्की सट्ठिसयं पुह वरण अवरेण।
वीसं वीसं सयचे खेत्ते सत्तरिसयं वरदो॥568॥ (त्रिलोकसार)
4. मनुस्मृति।

Scanned by CamScanner

कुल के आदि बीज भूत प्रथम विमलवाहन, दूसरे चक्षुष्मान्, तीसरे यशस्वी, चतुर्थ अभिचंद्र, पांचवें प्रसेनजित्, छठे मरुदेव और सातवें नाभिराज भरतक्षेत्र में ये कुलोत्तम–कुलकर हुये हैं। इसी में से सातवें कुलकर नाभिराज से मरुदेवी के गर्भ में आठवें अवतार ऋषभदेव हुए हैं।

भागवत में भी ऋषभदेव को विष्णु का आठवां अवतार माना है–

''भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमंथिनां शुक्लया तनुवावतार।'[1]

यज्ञ में महर्षियों द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर श्रीभगवान् महाराज नाभिराज को प्रिय करने के लिये उनके रनिवास में महारानी मेरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वचेता मुनियों का धर्म प्रगट करने के लिये शुद्धसत्त्वमय विग्रह-शरीर से प्रगट हुये।

वायुपुराण में भी कहा है–

नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं, मेरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे, वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं, पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं, भरताय न्यवेदयत्।
तस्माद् भारतं वर्षं, तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥[2]

अभिप्राय यह है कि नाभिराजा की पत्नी मेरुदेवी ने ऋषभ पुत्र को जन्म दिया। ऋषभदेव ने सौ पुत्रों में अग्रणी भरत को जन्म दिया और भरत का राज्याभिषेक कर उन्हें हिमाचल से लेकर दक्षिण देश तक राज्य देकर स्वयं दीक्षा ले ली। इन्हीं भरत सम्राट के नाम से यह देश 'भारत' कहलाया है।

अन्य भी प्रमाण वैदिक ग्रन्थों के देखे जाते हैं–

''येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद् येनेदं वर्षं भारत-मिति व्यपदिशन्ति।''[3]

''ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्।''[4]

ऋग्वेद आदि वेदों में भी ऋषभदेव को तो माना ही है, कहीं-कहीं चौवीस तीर्थंकरों को भी स्वीकार किया है। यथा–

''ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभाद्यान वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये।''[5]

---

1. भागवत स्कंध 5 अ० 3।

2. वायुपुराण 31, 5052, 3. भागवत स्कंध 5, अ० 4, 4. नृसिंहपुराण 30-7, 5. ऋग्वेद, 6. यजुर्वेद।

Scanned by CamScanner

ॐ तीन लोक में प्रतिष्ठित ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान पर्यंत चौबीस तीर्थंकरों की और सिद्धों की मैं शरण लेता हूं।

अन्यत्र भी–

"ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय।"[1]

बौद्धदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य धर्मकीर्ति लिखते हैं–

"ऋषभो वर्धमानश्च तावादौ यस्य स ऋषभवर्धमानादिः दिगंबराणां शास्ता सर्वज्ञ आप्तश्चेति।"[2]

इससे स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी में भी जैनेतर विद्वान् जैनधर्म के प्रथम उपदेशक भगवान् ऋषभदेव को और अन्तिम उपदेशक सर्वज्ञ वर्धमान भगवान को मानते थे।

इन सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव को सभी ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है और बौद्धग्रन्थ में जैन के प्रथम तीर्थंकर ही कह दिया है। तथा इन्हीं के प्रथम पुत्र भरत के नाम से इस देश का 'भारत' नाम स्वीकार किया है।

जैनधर्म स्वतंत्र है—

यह जैन एक स्वतंत्र धर्म है न कि किसी धर्म की शाखा, इसके लिये भी प्रबल प्रमाण हैं।

षट्दर्शन के नामों में–

जैना मीमांसका बौद्धाः, शैवा वैशेषिका अपि।
नैयायिकाश्च मुख्यानि, दर्शनानीह सन्ति षट्॥[3]

जैन, मीमांसक, बौद्ध, शैव, वैशेषिक और नैयायिक ये छह प्रमुख दर्शन इस देश में हैं।

वायुपुराण में भी लिखा है–

उपासनाविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धिचेतसाम्।
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च, सौरं शाक्तं तथार्हतम्॥
षट्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च।
एतदन्यच्च विविधं पुराणेषु निरुपितम्॥

इन छहों दर्शनवालों की उपासना विधि भी स्वतंत्र है। और ये छहों दर्शन स्वभाव से निश्चित–स्वतंत्र हैं।

अतएव इस जैनधर्म को हिन्दूधर्म की शाखा नहीं माना जा सकता।

---

1. यजुर्वेद
2. न्यायबिंदु 3/131, पृ० 126,
3. शारदीयाख्य नाममाला, 147 (मालती माधव, 1614, 1615)

Scanned by CamScanner

जैनधर्म में असंख्यात तीर्थंकर—

तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि "ये अवसर्पिणी-उत्सर्पिणो काल अनंत होते रहते हैं। असंख्यातों अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के बीत जाने पर एक 'हुंडावसर्पिणी' काल आता है।"[1] इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होने से असंख्यातों चौबीसी हो चुकी हैं अतः 'भगवान महावीर स्वामी जैनधर्म के संस्थापक हैं' यह कथन कथमपि उचित नहीं है।

सिन्धु सभ्यता में जैनधर्म—

सिन्धु घाटी की सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध 'हड़प्पा' एवं मू-अन-जो-दड़ों' नामक स्थलों पर उत्खनन से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों का सूक्ष्म अध्ययन कर पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि उस समय श्रमण संस्कृति–जैनसंस्कृति का व्यापक प्रभाव था। जैनों के आराध्य देव की मूर्ति भी उसकी मुद्राओं–सीलों पर उत्कीर्णित मिली हैं।

इसी उत्खनन में लगभग तीन हजार ई०पू० की एक मानवमूर्ति मिली है, जिसे विद्वानों ने प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव के पिता अन्तिम कुलकर नाभिराय की मूर्ति माना है। यह मूर्ति उस समय की है कि जब उन्होंने अपने पुत्र ऋषभदेव को अपना राजमुकुट पहनाकर स्वयं दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया था। श्रीमद्भागवत में इसका स्पष्ट उल्लेख आता है–

"विदितानुरागमहापौर-प्रकृतिजनपदो राजा नाभिराजात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य सह मरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन महिमानमवाप्त।"[2]

अर्थ–नाभिराज ने अपने पुत्र-ऋषभदेव को राज्य देकर मरुदेवी के साथ तपपूर्वक–वैराग्य–दीक्षा समाधि को धारण कर महिमा को प्राप्त किया।

इस उद्धरण से भी भगवान ऋषभदेव अतीव प्राचीन सिद्ध होते हैं। पुनः उनका जैनधर्म भी अति प्राचीन सिद्ध हो ही जाता है।

जैनधर्म की व्याख्या—

जो कर्म शत्रुओं को जीत लेते हैं वे 'जिन' कहलाते हैं। यथा "कर्मारातीन् जयतीति जिनः।" तथा ये जिनदेव जिनके आराध्य देव हैं वे 'जैन' कहलाते हैं–'जिनो देवतास्येति जैनः'।

धर्म की व्युत्पत्ति है–'उत्तमे सुखे धरतीति धर्मः' जो प्राणियों को स्वर्ग–मोक्षरूप उत्तम सुख में ले जाकर धरे–पहुंचावे वही सर्वोत्तम धर्म है और वह धर्म अहिंसामय ही है।

---

1. तिलोयपण्णत्ति अ० 4, पृ० 354 (गाथा 1614, 1615)
2. भागवत संस्कृत टीका 5/4/3

Scanned by CamScanner

श्री गौतमस्वामी-इन्द्रभूति गणधर देव ने कहा है–

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥1॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय[1]॥2॥

धर्म सम्पूर्ण सुखों की खान है और हितकारी है, विद्वान् जन धर्म का संचय करते हैं, धर्म से ही मोक्ष सुख प्राप्त होता है ऐसे धर्म के लिये मेरा नमस्कार हो। संसारी जीवों के लिये धर्म से बढ़कर अन्य कोई मित्र नहीं है, धर्म का मूल दया है, ऐसे धर्म को मैं अपने हृदय में नित्य ही धारण करता हूं हे धर्म! तुम मेरी नित्य ही रक्षा करो।

अन्यत्र भी–

'अहिंसा परमोधर्मः यतो धर्मस्ततो जयः।'

अहिंसा सर्वश्रेष्ठ परम धर्म है और जहां धर्म है वहां सर्व प्रकार से जय होती है।

पांच अणुव्रत—

इस अहिंसा धर्म के पालन हेतु श्रावक–गृहस्थ के लिये पांच अणुव्रत माने हैं–अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

संकल्पपूर्वक–अभिप्रायपूर्वक–जानबूझकर दो इंद्रिय आदि त्रसजीवों को नहीं मारना अहिंसाणुव्रत है।

हिंसा के चार भेद हैं–संकल्पीहिंसा, आरंभी हिंसा, उद्योगिनी हिंसा और विरोधिनी हिंसा। अभिप्रायपूर्वक जीवों की हिंसा संकल्पी हिंसा है। गृहस्थाश्रम में चूल्हा जलाना, पानी भरना आदि कार्यों में जो हिंसा होती है वह आरंभीहिंसा है। व्यापार में जो यत्किंचित् हिंसा होती है वह उद्योगिनी हिंसा है और धर्म, देश, धर्मायतन आदि की रक्षा के लिये जो युद्ध में हिंसा होती है वह विरोधिनी हिंसा है। इन चारों ही हिंसा में गृहस्थ लोग मात्र संकल्पी हिंसा का ही त्याग कर सकते हैं, शेष तीनों हिंसा से सावधानी और विवेक अवश्य रखते हैं इसीलिये यह व्रत श्रावकों का 'अहिंसाणुव्रत' कहलाता है।

ऐसे ही स्थूलरूप से झूठ का त्याग करना सत्याणुव्रत है। इस व्रती को ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए कि जिससे धर्म की हानि हो या किसी पर विपत्ति आ जावे अथवा किसी जीव का घात हो जावे।

पर के धन की चोरी का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है।

परस्त्री सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। स्त्रियों के लिये पर पुरुष का त्याग करना होता है जैसे कि सती सीता ने अपने इस ब्रह्मचर्याणुव्रत–शीलव्रत के प्रभाव

---

1. वीरभक्ति।

Scanned by CamScanner

से अग्नि को जल बना दिया था।

अपने धन-धान्य का परिमाण करके इच्छाओं को सीमित करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है। इन पांचों व्रतों के पालन करने वाले अणुव्रती कहलाते हैं।

ये अणुव्रती गृहस्थ इस भव में सदा सुखी एवं यशस्वी होते हैं और परभव में नियम से स्वर्ग के वैभव को प्राप्त करते हैं।

पांच महाव्रत—

जो महापुरुष हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांचों पापों का पूर्णरूपेण त्याग कर देते हैं वे महाव्रती कहलाते हैं। वे महामुनि, महासाधु, महर्षि, दिगम्बर मुनि आदि कहलाते हैं।

युग की आदि में अयोध्या में भगवान ऋषभदेव जन्मे थे। ये इक्ष्वाकुवंशीय कहलाये थे। इन भगवान् ने कल्पवृक्ष के अभाव में प्रजा के लिये असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट् क्रियाओं का उपदेश देकर जीने की कला सिखायी। विदेहक्षेत्र के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण व्यवस्था बनाई। महामंडलीक राजा बनाकर पुनः उनके आश्रित अनेक राजा-महाराजा बनाकर 'राजनीति' का उपदेश दिया। अनन्तर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग का उपदेश दिया।

जब भगवान ऋषभदेव दीक्षा के सन्मुख हुये तब अपने बड़े पुत्र भरत को राज्य देकर दीक्षा ली। आगे भरत चक्रवर्ती ने अपने बड़े पुत्र 'अर्ककीर्ति' को राज्य देकर जैनेश्वरी दीक्षा ली। अर्ककीर्ति ने अपने पुत्र 'स्मितयश' को राज्य सौंपकर मुनिपद धारण किया। इसी तरह इस इक्ष्वाकुवंश में अपने-अपने पुत्रों को राज्य दे-देकर दीक्षा ले-लेकर मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। यह परम्परा, चौदह लाख राजाओं तक अविच्छिन्न चलती रही है ऐसा हरिवंश पुराण[1] में लिखा है।

तात्पर्य यह समझना कि चतुर्थकाल में तो यह जैनधर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों तक में विस्तार को प्राप्त था। पंचम काल में भी दक्षिण में मैसूर आदि में जैन राजा होते रहे थे।

आज यह जैनधर्म वैश्यों में सिमट कर रह गया है।

जैन धर्म है जाति नहीं—

जैन धर्म है, जाति नहीं है। जाति, गोत्र और धर्म इन तीनों को समझना अति आवश्यक है। वर्तमान में जैनधर्मानुयायियों में चौरासी जातियां सुनी जाती हैं। अग्रवाल, पोरवाड़, खंडेलवाल, पद्मावती पुरवाल, परवार, लमेचू, चतुर्थ, पंचम, बघेरवाल, शेतवाल आदि। गोत्रों में प्रत्येक जाति के गोत्र अलग-अलग हैं। जैसे कि अग्रवाल में गोयल, सिंगल, मित्तल आदि। खंडेलवाल में सेठी, रांवका, गंगवाल आदि।

---

1. हरिवंशपुराण, सर्ग 60।

Scanned by CamScanner

अतएव जाति और गोत्र अलग हैं तथा धर्म अलग है। फिर भी कुछ व्यवस्था की दृष्टि से 'जनगणना' में जाति के कालम में जैन लिखाना आवश्यक हो गया है।

मेरा तो यही कहना है कि सभी जैनकुल में जन्में लोगों को अपने नाम के साथ 'जैन' लगाना अति आवश्यक है। प्रायः मारवाड़ में और दक्षिण में श्रावक नाम के साथ गोत्र लगाते हैं 'जैन' नहीं लगाते हैं तो जैन जनगणना में जैन अतीव अल्प दिखते हैं।

एक बार तीर्थंकर 'पत्रिका' में छपा था–

जैन जो 'जैन' नहीं लिखते उनकी संख्या एक करोड़ चौदह लाख है।

'पुणे'। ऐसे जैन, जो अपने नाम के साथ 'जैन' शब्द का प्रयोग नहीं करते, प्रादेशिक उपनाम लिखते हैं, कोई आंचलिक भाषा बोलते हैं तथा सामान्यतः काश्तकार–खेती करने वाले हैं, संख्या में एक करोड़ चौदह लाख हैं। ये पूरे देश में फैले हुये हैं और किस्म-किस्म के उपनामों से पहचाने जाते हैं। एक ताजे सर्वेक्षण के अनुसार ये महाराष्ट्र में 15 लाख, बिहार, बंगाल, उड़ीसा में 35 लाख, कर्नाटक में 15 लाख, गुजरात में 12 लाख, तमिलनाडु में 2 लाख, मध्यप्रदेश में 15 लाख, राजस्थान में 10 लाख तथा अन्य राज्यों में 10 लाख हैं। जैन परिषद् के संयोजक श्री महावीर चव्हाण ने[1] जैन धर्म के स्वतंत्र अस्तित्व की मांग की है।''

इसलिये नाम के साथ 'जैन' लगाना चाहिये। जैसे कि–कैलाश चंद जैन, गोयल। हीरालाल जैन, गंगवाल आदि।

णमोकार महामंत्र—

जैनधर्म का अनादिनिधन अपराजित महामंत्र णमोकार मंत्र है। इस महामंत्र का हमेशा जाप्य करते रहना चाहिये। प्रत्येक जैनमंदिर के मुख्यद्वार के ऊपर व शिखर पर बड़े-बड़े अक्षरों में इसे लिखना चाहिये या पत्थर पर उत्कीर्ण कराकर लगा देना चाहिये जिससे कि दूर से ही 'यह जैन मंदिर है' ऐसी पहचान हो जावे।

प्रत्येक जैन श्रावक को अपने मकान, दुकान, कार्यालय तथा अन्य सभी प्रतिष्ठानों के मुख्यद्वार के ऊपर इस णमोकार मंत्र को अवश्य लिखना चाहिये। इससे 'जैनत्व' की पहचान तो है ही, साथ ही भूत, प्रेत, चोर, डाकू, सर्प, बिच्छू आदि से भी सुरक्षा होगी और यह महामंत्र रक्षामंत्र होने से 'कवच' का काम करेगा।

इस प्रकार जैनधर्म को अनादि निधन–शाश्वत सार्वभौम धर्म मानकर इसकी छत्रछाया में आकर सर्वजीवों पर दया भाव रखते हुये प्राणीमात्र में परस्पर में सौहार्द भाव धारण कर अपने मनुष्य जन्म को सार्थक करो यही मंगलकामना है। ❑❑❑

---

1. श्री चव्हाण का पता–पो० बो० 28
चिंचवड़ पूर्व, पुणे–411014
तीर्थंकर–जुलाई 97 से साभार

Scanned by CamScanner

आवश्यक सूचना

पूज्य गणिनी प्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित एवं अनुवादित शताधिक ग्रन्थों का प्रकाशन संस्थान द्वारा किया गया है। बच्चों के लिए बाल-विकास चार भागों में, पूजन मण्डल विधान के लिए इन्द्रध्वज मण्डल विधान, कल्पद्रुम मण्डल विधान, सर्वतोभद्र विधान, तीन लोक मण्डल विधान, त्रैलोक्य मण्डल विधान, शांति विधान, ऋषि मण्डल विधान, पंचपरमेष्ठी विधान।

आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार-नियमसार हिन्दी टीका सहित तथा रोचक आधुनिक शैली में कथायें-परीक्षा, प्रतिज्ञा, उपकार, रोहिणी नाटक आदि पुस्तकें, स्वाध्याय के लिए जैन भारती, ज्ञानामृत आदि ग्रन्थ मंगा कर पढ़ें, तथा अपने इष्ट मित्रों को पढ़ने की प्रेरणा कर ज्ञान प्रचार का पुण्य अर्जित करें। विस्तृत जानकारी के लिये सूची-पत्र मंगावें।

पता :

दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ०प्र० 250 404

फोन : (01233) 80184

तार-जम्बूद्वीप

Scanned by CamScanner